कैलास परिक्रमा पर तीन तीर्थयात्री

एक वैद्य, एक प्रस्तर मूर्तिकार एवं एक बावर्ची बहुत अच्छे दोस्त थे । यद्यपि वैद्य एक बोनपो था, मूर्तिकार एक बौद्ध और बावर्ची एक हिन्दू था, फिर भी उन तीनों में एक बात समान थी – वे तीनों ही अपनी पत्नियों और बच्चों की मांगों से ऊब चुके थे । उनकी पत्नियाँ बड़े और बेहतर घर, अच्छी रसोई और अच्छे खाने के लिए उनके पीछे पड़ी रहती थीं । वो चाहती थीं कि उनके पास फल व अन्न उगाने के लिए ज्यादा से ज्यादा जमीन हो और उनके बच्चों व परिवार की हालत बेहतर से बेहतर हो । बच्चों में भी पुश्तैनी सम्पत्ति के लिए आपस में और अपने माता-पिता के साथ खूब झगड़े होते थे ।

वे तीनों दोस्त अपनी पत्नियों से उत्पीड़ित महसूस करते थे व पारिवारिक द्वन्द्वों से आहत थे । उन्होंने ये तय किया कि इन शर्तों पै जीवन नहीं जिया जा सकता है । वे सारी मोह माया, सांसारिक दुनिया और उसकी सारी भौतिक सुविधाओं का त्याग करना चाहते थे । उन्होंने दृढ़संकल्प लिया कि वे अपने अंदर की वाणी की खोज, प्रकृति की पवित्रता की पूजा तथा रक्षा के लिए कैलास पर्वत की तीर्थयात्रा पर जाएंगे । वह कैलास पर्वत जिसकी झलक मात्र से ही सारे पाप धुल जाते हैं और पीड़ा व बंधनों से पार होकर आत्मा प्रबुद्ध होती है । उन्होंने सोचा कि उस पवित्र पर्वत की सबसे कठिन भीतरी मार्ग से परिक्रमा करके वे लाभान्वित होंगे और उसके पश्चात वे अपना शेष जीवन ध्यान में बिताएंगे । उसी प्रकार का ध्यान जो भगवान बुद्ध ने बोधिवृक्ष के तले एवं भगवान शिव ने पवित्र मानसरोवर के पास के पर्वत की गोद में किया था । भगवान बुद्ध ने भी अपनी यौवना व सुन्दरी पत्नी यशोधरा व अपने पुत्र व

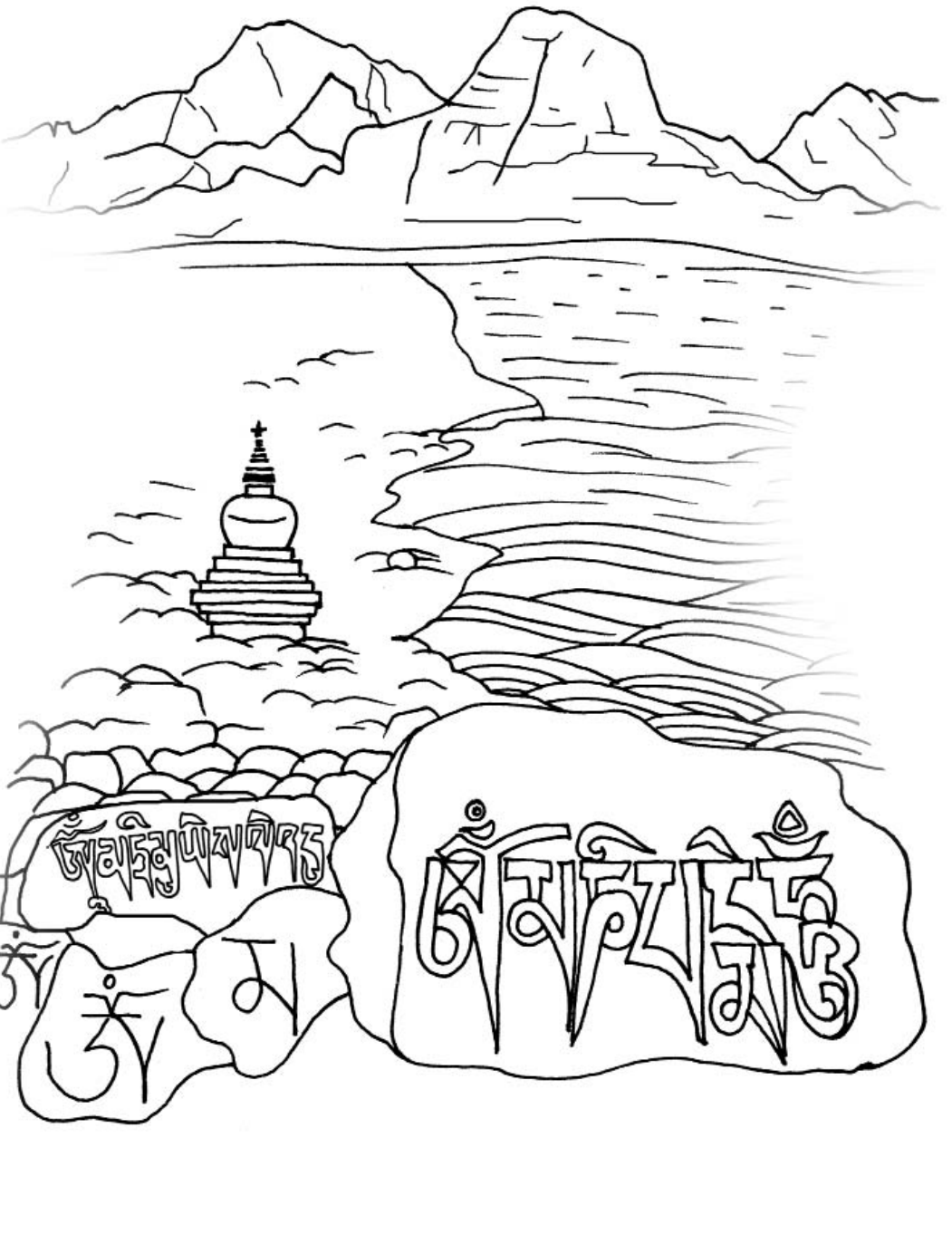

राज्य का त्याग किया था और भगवान शिव ने भी स्वयं को घर परिवार के संघर्ष व सारी सुख सुविधाओं से दूर करते हुए माता पृथ्वी की नाभि में शांति एवं एकांत की खोज में पत्नी पार्वती से वियोग को चुना था । भौतिकता एकाग्रचित्त को न भटकाए उस हेतु दोनों ने ही अपने मन मस्तिष्क को पूर्णतः नियंत्रित कर लिया था ।

उन्होंने यात्रा पर जाने से पहले ये निश्चय किया की वे अपनी सभी तृष्णाओं, अनवरत आवश्यकताओं और वे अपवित्र वस्तु जिसमें उनका शरीर भी सम्मिलित है सबका त्याग करने के लिए स्वयं का अंतिम संस्कार करेंगे । जो कि संसार से विदा होने का एक सांकेतिक भाव है । उनसे पहले भी कई लोगों ने मुक्ति के लिए यही मार्ग अपनाया था । अतः मध्यरात्रि में जब सभी ग्रामवासी व उनके परिवारवाले सो गए तब वे नदी के किनारे तालाब के पास स्थित गाँव के श्मशान घाट पर गए । उन्होंने चिता पर ढेर सारी लकड़ियों के ऊपर अपने स्वयं के पुतले रख दिए । उस चिता में शुद्ध घी डाला और उसे प्रज्ज्वलित कर दिया । जब तक चिता जलती रही वे मन्त्रोच्चारण करते रहे और अपनी स्वयं की आत्मा की शांति के लिए प्राथर्ना करते रहे ।

जब पुतले जलकर भस्म हो गए तब उन्होंने अपने अवशेष मुट्ठी में लिए और रस्म के अनुसार उन्हें नदी में अर्पित कर दिया । प्रथा के ही अनुसार उन्होंने दीप जलाये व मृत्युपश्चात जो दावत गांव वालों को देनी थी उसका समापन मछलियों को दाल चावल खिलाकर किया ।

सुबह के ३ बजे जब अंतिम संस्कार की विधि संपन्न हुई तब वे तीनों दोस्त अपनी सोती हुई पत्नियों व बच्चों को छोड़ कर हाथों में भिक्षापात्र लिए हुए और जो कपड़े व जूते वो पहने हुए थे उसी में ही तीर्थयात्रा पर निकल पड़े । किन्तु हर तीर्थयात्री ने अपने साथियों को बताये बिना अपने कपड़ों में कुछ नकदी छुपाई हुई थी । वे साथियों के सामने भौतिक वस्तुओं से सुख प्राप्त करने की विचारधारा को छुपाना चाहते थे इसीलिए उन्होंने अपने साथियों को ये बात नहीं बतायी । और वे अपने रूपयों को उन खतरनाक डाकुओं से भी बचाना चाहते थे जिनका पेशा ही था तीर्थयात्रियों को लूटना व निर्ममतापूर्वक उनकी हत्या कर देना । वे तीर्थयात्री कठिनाईयों भरे मुश्किल क्षेत्रों व तूफानी मौसम में संसार के मध्य से दूसरे आयाम तक जाते पर्वत जिसे देवता मेरू और मनुष्य कैलास पर्वत के नाम से पुकारते हैं उसी पर्वत पर परमात्मा की खोज के लिए श्रद्धापूर्वक तीर्थयात्रा पर चल पड़े ।

वे दिन भर चढ़ाई करते रहे और यह मन्त्र दोहराते रहेः "वृक्ष पवित्र है, पत्थर पवित्र है और रास्ते की धूल पवित्र है, नदी पवित्र, चाँद पवित्र, सितारे, सूर्य एवं सारी प्रकृति पवित्र है ।"

दिन के अन्तिम प्रहर में वनस्पति रहित चट्टान वाले सीधे पहाड़ के तले एक बड़े से पत्थर की छाया में उन्होंने विश्राम किया । उनके पैरों में, जोड़ों में व शरीर के विभिन्न अंगों में पीड़ा होने लगी थी । मुँह प्यास से सूखने लगा था और भूख के कारण उनके पेट में गुर्राहट होने लगी थी । परंतु बिना किसी के सामने इस कष्ट की चर्चा किये हुए उन्हें अपनी यात्रा जारी रखनी थी और एक दूसरे के सामने साहस का दिखावा कायम रखना था ।

आखिर में उन तीनों में से बावर्ची मूर्छित अनुभव करने लगा और बोला, "अगर कहीं चाय मिल जाती तो बहुत अच्छा होता ।"

चाय के बारे में सुनते ही वैद्य ने भी अपने होंठों पर जीभ फेरी और मन ही मन अपनी पत्नी द्वारा बनाई हुई मक्खन के साथ शहद व कालीमिर्च के मसाले की चाय का स्वाद लेने लगा ।

उसने कहा, "क्यों न हम तुलसी वाली चाय बनायें ? भगवान विष्णु इस पौधे के स्वामी हैं । मैं जानता हूँ ये पवित्र पौधा यहाँ पाया जाता है । ये हमारी भूख को भी शांत कर देगा और हमें नयी स्फूर्ति से भी भर देगा ।"

"और मैं कुछ पत्थर के टुकडे इकट्ठे कर के लाता हूँ ताकि हम आग जलाने के लिए गड्ढा बना सकें । शायद मुझे कहीं कुछ याक की सूखी हुई खाद या सूखी झाड़ की टहनियाँ भी मिल जाए जलावन के लिए," मूर्तिकार ने उत्सुकता से कहा ।

"इसे तैयार करने की विधि मैं जानता हूँ । मैं नदी से पानी लेकर आता हूँ," बावर्ची ने उत्तर में कहा ।

कुछ समय पश्चात वैद्य को एक शुष्क झाड़ी मिली जिस पर नीले रंग के छोटे-छोटे फूल लगे हुए थे, जिसकी शाखा व पत्ते बैंगनी रंग के थे । पत्ते व डंडियां तोड़ने के लिए उसने अपना हाथ आगे बढ़ाया ही था कि वह अचानक से ठहर गया ।

उसने सोचा, इतने शुद्ध व पवित्र पौधे को मैं कैसे तोड़ सकता हूँ? आखिर तुलसी भगवान विष्णु की पत्नी है, जो सम्पन्नता की देवी लक्ष्मी का ही स्वरूप है ।

और उसकी आँखों के सामने अपनी पत्नी द्वारा आँगन में लगे एक गमले की पूजा करने का दृश्य उभर आया । प्रत्येक सुबह वह स्नान करके, साफ-सुथरे कपड़े पहन कर पूरा आँगन साफ करती थी । राख से रगड़ कर साफ किये हुए बर्तन में पानी भर कर सुगन्धित धूप जलाती थी । पौधों को बहुत प्यार से

पानी से धो कर मन्त्रों का जाप करते हुए उस पवित्र शाक की परिक्रमा करती थी ।

नहीं नहीं, वह यह पत्ते नहीं तोड़ सकता । यह सोचते हुए उस वैद्य ने अपने हाथ वापस खींच लिए और शिविर की ओर खाली हाथ ही रवाना हो गया ।

पत्थरों की खोज पर निकले हुए मूर्तिकार को बहुत घूमने के पश्चात आग जलाने के लिए पत्थर मिला । उसे एक बुद्ध मन्त्र ***ॐ मणि पद्म हूँ*** तराशा हुआ पत्थरों का टीला भी मिला, जिन्हें शायद उन से पहले आए हुए तीर्थयात्रियों ने भेंट के रूप में अर्पित किया होगा ।

अपने पूरे जीवन में जिन पत्थरों की उसने नक्काशी की, अत्यंत श्रद्धापूर्वक उपासना की व ***ॐ मणि पद्म हूँ*** का जाप किया, उन्ही पत्थरों पर आग जलाने के विचार ने उसे भयभीत कर दिया । वह जानता था जिन लोगों ने इसे ईश्वर की प्रार्थना के अलावा किसी और रूप में प्रयोग किया तो उसकी सदा दुर्गति ही हुई है । चाय पीने की प्रबल इच्छा ने एक क्षण के लिए उसकी अंतरात्मा को वशीभूत कर लिया था और वो उन पत्थरों को उठाने के लिए तत्पर हो गया था । परंतु मन्त्र अकिंत उन पत्थरों को वह चाय बनाने के लिए कैसे अपवित्र कर सकता था? वह भी वहीं ठहर गया गया ।

नदी से अपने भिक्षापात्र में पानी भरता हुआ बावर्ची भी बीच में ही रूक गया । उसने सोचा की यह पानी का स्रोत सारी नदियों में सर्वश्रेष्ठ और स्वयं विष्णु के पैर के अंगूठे से निकलकर कमल पुष्प की पतली डंडी की तरह बहती हुई देवी पवित्र नदी गंगा की सहायक नदी हो सकती है । मैं इस नदी से निकला ये पवित्र पानी कैसे ले जा सकता हूँ ?

वह नदी के किनारे खड़ा होकर गंगा के उद्भव की पौराणिक कथा के बारे में सोचने लगा । हिमालयपुत्री गंगा मेरू पर्वत - जो कैलास पर्वत का पौराणिक नाम है - की वंशज है । देवताओं की याचना के फलस्वरूप उनके पिता ने उन्हें मानव जाति की भलाई के लिए पृथ्वी पर अवतरण करने का आदेश दिया था ।

कौन होगा जो स्वेच्छा से स्वर्ग के सुख का परित्याग करके पीड़ा जगत का भोगी बनेगा ? दूरदर्शी देवी गंगा अदूरदर्शी व शोषक मनोस्थिति वाले मूर्ख जिन्हे प्रकृति और उसके स्वभाव की न कोई समझ है और न ही कोई सम्मान वैसे अनभिज्ञ लोगों के द्वारा अपमानित होते हुए और प्रदूषित व अवरूद्ध होते हुए स्वयं का भविष्य देख सकती थीं ।

परंतु फिर भी उनके पिता ने उनकी एक दलील न मानी और उन्हें पृथ्वी पर भेज दिया । स्वर्ग से निर्वासित होकर वो क्रोध में श्राप देते हुए भगवान शिव के सिर पर अवतरित हुई जहाँ शिवजी पर्वत के उच्च शिखर पर अत्यधिक शांति

व एकांत में साधना में लीन थे । दुनिया को विनाश से बचाने के लिए शिव ने गंगा को अपनी उलझी लटों में चमेली की लड़ियों की तरह गूँथ लिया था एवं उनकी अनियंत्रित गति को नियंत्रित करके गंगा को इस संसार में प्रवर्तित किया था । भगवान शिव ने गंगा को तब तक बहने से रोक कर रखा जब तक कि गंगा शांत न हो गयी व स्वयं सन्तुलन न बना पायी । वो धैर्यपूर्वक हजारों वर्षों तक अमानव के मानव बनने की प्रतीक्षा करती रहीं । भगवान शिव ने गंगा को संसार की सभी नदियों की देवी बनाकर उनका सम्मान व आदर किया ।

उसके पश्चात् शिव ने उन्हें एक सरोवर में प्रवाहित किया जिससे वो बहुत सी नदियों व उपनदियों में विभाजित हो गयीं । घुमावदार मार्ग से होते प्रत्येक भूमि को सींचती हुई प्रचुर मात्रा में फल व भोजन रूपी आशीर्वाद की बौछार करते हुए मनुष्य की आध्यात्मिक व भौतिक प्यास बुझाते हुए बही ।

नहीं मैं इस दिव्य पानी को अपवित्र नहीं कर सकता एवं इस पानी द्वारा बनी हुई चाय नहीं पी सकता, बावर्ची ने सोचा ।

अतः वे तीनो मित्र पुनः खाली हाथ एकत्रित हुए व एक दुसरे को अपने-अपने अनुभवों के बारे में बताया । यद्यपि वे एक दुसरे के समरूप अनुभव से आश्वासित थे फिर भी वे एक दूसरे की निराशा में किसी भी प्रकार की सहायता नहीं कर पा रहे थे । आहार पाने की सारी आशा वे खो चुके थे परंतु अभी भी उनके पेट में गुर्राहट हो रही थी । अत्यंत भूख व थकान के कारण वे चलने-फिरने में असमर्थ थे और अंत में फीकी पड़ती हुई संध्या के प्रकाश में उदास भाव के साथ वहीँ बैठ गए ।

तभी पहाड़ों के बीच बने रास्ते से एक गडेरिया स्त्री अपनी बकरियों, याक, भेड़ों के साथ घर वापस लौट रही थी । उसने सिर पर एक दुपट्टा ओढ़ा हुआ था जिसके नीचे रूखे मौसम की वजह से सूखा हुआ उसका झुर्रीदार चेहरा नजर आ रहा था । उसके मुँह में दाँत भी टूटे हुए थे । आँखें तीक्ष्ण एवं लक्ष्यभेदी प्रतीत होती थी ।

उसने उन तीनों दोस्तों को एक गोल पत्थर पर बड़े दयनीय भाव में बैठे हुए देखा । उसने अपनी सूत कातने वाली घुमावदार छड़ी को रोका ओर थोड़े कठोर स्वर में बोली, "तुम लोग यहाँ ऐसे क्यूँ बैठे हो? क्या बात है? ऐसा लगता है जैसे तुम तीनों ने गोबर निगल लिया हो ।"

उन तीनों दोस्तों ने उस स्त्री को अपनी कहानी सुनानी प्रारम्भ की ।

"मेरे पास दिन भर खाली समय नहीं है," उसने थोड़े गुस्से में कहा ।

उन तीनों दोस्तों ने उसे अपने सभी अनुभवों की कहानी बताई । अपनी पत्नियों व बच्चों को छोड़ने की, अपना अंतिम संस्कार करना व परमेश्वर बनने

की चाहत, मानवीय अस्तित्व के जंजाल से ऊपर उठने की चाहत, चाय पीने की ललक व पवित्र चीजों का उपभोग एवं उनसे छेड़छाड़ का दुस्साहस न करने इत्यादि का वर्णन किया ।

यह सुनकर उस महिला ने विस्मयपूर्वक कहा, "क्या ये घास मेरे पशुओं के लिए ज्यादा पवित्र है या फिर ये खाद्य और पेय पदार्थ तुम्हारे लिए ज्यादा पवित्र हैं ? क्या मनुष्य और उसकी आवश्यकताओं को छोड़कर सब कुछ पावन व पवित्र है ? तुम यह नहीं जानते कि जिस परमात्मा ने हमें बनाया है उसी परमात्मा ने हमारी आवश्यकताओं के लिए इन चीजों को बनाया है ? अरे अज्ञानी ! इस संसार में सभी कुछ भक्ष्य है । पवित्र जीवन के प्रति सभी कुछ समर्पित है । जब तुम्हारा समय आएगा तब तुम भी जीवों को भोजन दोगे, तालाब की मछलियों को आहार प्रदान करोगे और अग्नि व वायु को पोषित करोगे । परमेश्वर बनने से पहले पूर्ण रूप से मनुष्य बनना सीखो ।"

"परंतु, हमें पानी, पेड़-पौधों का सम्मान करना है व प्रकृति में जो भी पवित्र है उसे मानव द्वारा समय से पूर्व नष्ट होने से बचाना है !" बावर्ची ने कहा ।

"हम इन पवित्र तत्वों को हानि नहीं पहुंचा सकते," ये कहते हुए वह मूर्तिकार भी भावुक हो पड़ा ।

उस स्त्री ने उन्हें समझाया, "प्रत्येक वस्तु हमारे उपयोग व लाभ के लिए बनी है । इसका उपयोग करो परंतु हानि मत पहुंचाओ । सुनिश्चित करो कि एक पौधे द्वारा प्रदत्त चीजों का उपभोग करने के पश्चात् उसका पुनः बीजारोपण हो । हमेशा इस बात का ध्यान रखो कि प्रत्येक व्यक्ति के लिए जीवनामृत जल प्रचुर, शुद्ध व स्वतंत्रतापूर्वक बहता रहे और जिस टीले के पत्थर की प्रयोग से बनी चाय का आनंद लोगे, उस पत्थर को पुनः साफ करके शुद्ध रूप से वापस रख दोगे ।"

"अरे मूर्खों ! मृत्यु से पहले मरण बेकार है," उस स्त्री ने फुसफुसाते हुए कहा परंतु वह इतना स्पष्ट था की सभी को सुनाई दिया जा सके । तत्पश्चात उस स्त्री ने अपने मवेशियों को सीटी बजाकर आवाज लगाई और अपनी सूतकताई पुनः आरम्भ करते हुए वहां से चली गयी ।

उस स्त्री के चले जाने के पश्चात् उसके शब्द उन दोस्तों के सिर में हथौड़े की तरह आघात करने लगे । उस स्त्री द्वारा उनको 'मूर्ख' बोला जाना उन्हें विशेष रूप से उनकी मूढ़ता का आभास दिला गया एवं वह एक शब्द उनकी अभिज्ञता के पर्दों को भेदते हुए उन्हें अवास्तविक इच्छाओं से जगा गया । उन्हें यह अहसास हुआ कि वे एक दूसरे की गलत आकांक्षाओं को बढ़ावा दे रहे थे एवं आपस में पूछताछ व परिक्षण करने के बजाय एक दूसरे के सामने अपनी

वास्तविकता का उल्लेख करने में डर रहे थे । उन्होंने अपने कपड़ों के अस्तर में छिपाये हुए पैसों की बात भी एक दूसरे के समक्ष स्वीकार की ।

अब तक वे समझ चुके थे कि वे स्वयं और उनकी आवश्यकताएं दोनों ही नितान्त पवित्र हैं । उन लोगों ने बहुत ही आदरपूर्वक पत्थर एकत्रित किये, पानी लेकर आए, तुलसी के पत्ते तोड़े और अपने साथ लाए हुए लोहे के बर्तन में चाय बनाकर उसे बहुत आनंद के साथ पिया । उन्होंने खाने-पीने का सामान खरीदने के लिए अगले शहर जाने का निश्चय किया व आरामदायक यात्रा के लिए गधे किराये पर लिए और कैलास यात्रा को आगे बढाया ।

भीषण आँधी व बढ़ती भूख का सामना करने के पश्चात् वे एक शहर पहुंचे । वहां वे जौ का आटा, चीनी का ढेर, चाय, बिस्कुट, दाल, घी, गेहूं का आटा, छाता, सोने के लिए बिछौना व मलहम देखकर अत्यंत प्रसन्न हुए । गधों पर सामान को लादते समय हिम्मत करके बावर्ची ने प्रश्न किया, "तीर्थयात्रा के पश्चात् हम क्या करेंगे? क्या हम वापस अपनी पत्नियों के पास घर लौटना चाहेंगे? शायद मैं वापस लौटना चाहूं," बावर्ची ने साहसपूर्ण भाव से अपने साथियों से कहा ।

मूर्तिकार ने बावर्ची की बात का उत्तर देते हुए कहा, "परंतु गृहस्थ जीवन अत्यधिक कष्टों से व दुविधाओं से भरा है ।"

"कष्ट व दुविधा ही जीवन है । क्या तुम्हे लगता है जिस तूफान से हम निकल कर आए हैं वो कम कष्टदायक था? हमें प्रबुद्ध होना सीखना पड़ेगा जिसका अर्थ मेरे लिए जीवन का सही दृष्टिकोण प्राप्त करना व किसी भी परिस्थिति व अवसर में स्वयं को लड़खड़ाने से बचाना है," वैद्य ने उत्तर दिया ।

यात्रामार्ग की कठिनाई के हिसाब से जितनी आराम से यात्रा हो सकती थी तीनो मित्रों ने उतने आराम से सफलतापूर्वक तीर्थयात्रा संपन्न की । वे यह प्रार्थना करते रहे कि कैलास पर्वत उन्हें अपनी आवाज सुनना सिखाए, हर कदम पर संघर्ष करना और इस पवित्र प्रकृति व स्वयं की आत्मा को आदर व प्रेम करना सिखाए ।

"हे कैलास पर्वत ! हमारी नादानियाँ व अज्ञान को मिटा देना !" यही प्रार्थना करते हुए वे तीनों अपने घरों की और चल पड़े ।